खाली होना

सुधीर कुमार सोनी

एक पेड़ खड़ा है
वह पत्तों से खाली है
पत्तों के बिना खाली पेड़,अच्छे नहीं लगते ।

निट्ठल्ला आदमी,घर के लोगों को
और बाहर के लोगों को भी,खटकता है
आदमी का खाली होना, अच्छा नहीं लगता ।

अच्छे नहीं लगते
खाली झोपड़ी
खाली मकान
खाली ईमारतें ।

गहराती रात में,सड़कें खाली हो जाती हैं
लगता है,जैसे थककर रुक गयी हो ।

खाली नदियाँ
खाली तालाब
खाली कुएँ
सभी ,अपनी अपनी कहानी कहने को आतुर हैं
जिसे हम मनुष्यों ने, कभी नहीं सुना ।

अपने अंतिम स्टेशन में पहुँचकर
रेलगाड़ी खाली हो जाती है ।

खाली होना

भरा होने का क्रम,चलता रहता है ।

लेकिन जेब का खाली होना
लम्बे समय तक खाली होना
आदमी को लगता है,उसकी दुनिया खाली हो गयीं है
पैर उठते नहीं कहीं निकलने को
शरीर भारी हो जाता है ।

कुछ बचा रहे

सुधीर कुमार सोनी

कितना भ्रम पैदा करता है
यह सवाल
की हमें
जंगल बचाना है
पहाड़ बचाना है
नदियाँ बचाना है
संस्कृति /परम्परा बचाना है
व्यवस्था का गाना है
जो सिर्फ गाया जाना है ।

कुछ लोग
जो करते थे
कहते नहीं थे
उस मुहीम में
मैं भी शामिल हुआ
और जाना
की क्या-क्या है
जो अपने स्वयं को बचाने में व्यस्त है ।

नदियाँ
अपनी निर्मलता/पवित्रता बचाने में व्यस्त है ।

धरती व्यस्त है
अपनी हरियाली और उपजाऊपन को बचाने में ।

सागर अपनी विशालता
और

गुणों को बचाने में व्यस्त है ।

आसमान
परीक्षणों से लगातार जूझ रहा है
दूषित हवाएं उसके सीने में लदी हैं
अपने नीलेपन को बचाने में
आसमान लाल-पीला हुआ जा रहा है ।

पहाड़
अपनी चुप्पी
सख्त मिजाज
और खुरदुरे को बचाने में व्यस्त है ।

बकरी के झुण्ड
ढूंढ आयें हैं
कुछ ठीये पत्तों के
जो अपनी ताजगी और हरेपन के साथ मौजूद है ।

विनती है ईश्वर
बचा रहे
थोड़ा सा शुद्ध जल
किसी कुएं/तालाब /पोखर में ।

बचा रहे
हमारे बुढ़ापे के समय में
घुटनों में पानी ।

नौजवानों में बचा रहे
आँखों में पानी ।

हवा इतनी भी बची रहे
कि रंग-बिरंगे पतंग उड़ सके आकाश में ।

इतनी उमंग बच्चों के मन में बची रहे
कि तितली के पीछे दौड़ सकें
उड़ते पंछी को निहारे ।

इतनी सदाशयता
अपनापन बचा रहे
कि बचे हुए समय में
किसी की स्मृति बची रहे ।

बची रहे कोशिश इतनी भी
की कुछ भी जो अपने न होने के कगार पर हो
उसे बचाया जा सके ।

मकड़ी

मकड़ी के जाल बुनने की गति में
कोई बदलाव नहीं आया है
उसी तरह वह युगों से बुन रही है
अपना जाल ।

मकड़ी
ऐसे समय बुन रही है
जाल
जब सारे बुनकर छोड़ते जा रहे हैं
कपड़े बुनना
सर पर हाथ धरे बैठें हैं
सरकार का मुँह ताक रहें हैं ।

मकड़ी
फिर भी बुन रही है जाल
लगातार
और
सभी घरों की गृहणियाँ
एक दिन जाल को समेटकर फेंक देती हैं
बाहर
इन्हें नहीं चाहिये मुआवजा
न गृहणियों से
न सरकार से ।

मकड़ी को घर का कोना
साफ़-सुथरा खटकता है
और फिर वह
बुनती है अपना जाल बार-बार
बार-बार झाड़ू से फेंक दिये जाने के बावजूद ।

सुधीर कुमार सोनी